REVIEW OF RESEARCH

कलियुग या संक्रमण काल– एक समीक्षात्मक अध्ययन

अनिल प्रसाद सिंह
शोधार्थी, इतिहास विभाग, ल0ना0मिथिला विश्वविद्यालय,दरभंगा.

सार–

प्रस्तुत शोध पत्र के अन्तर्गत, पौराणिक एवं स्मृतिग्रंथ में चार युगों की परिकल्पना की गई है। प्रथम कृतियुग में धर्म का पाँव दुरूस्त था अर्थात् लोग धर्मानुसार आचरण करते थे और सर्वत्र सुख, शांति एवं आनंद व्याप्त था। दूसरा त्रेतायुग में धर्म का एक पाँव टूट गया, फिर भी महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रकल्पित राम के आदर्श राज्य की स्थिति संतोषजनक थी और ब्राह्मणवादी संस्था अच्छे से कार्य कर रही थी। तीसरा युग द्वापर था, जिसमें धर्म के दो पाँव टुट जाने की बात कही गई है। परिणामस्वरूप समाज में अधर्म का प्रवेश हुआ और धर्म तथा अधर्म के प्रश्न पर महाभारत का युद्ध हुआ। धर्म का क्रमशः, पतन चौथे युग अर्थात कलियुग में चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया, जिसमें की धर्म के तीन पाँव टुट चुके थे और केवल एक पाँव ही बचा हुआ था।

प्रस्तावनाः

सतयुग से लेकर कलियुग तक आते–आते स्थितियाँ परिवर्तित हो गयी थी।[1–3] धर्म के पाँव टुटने का अभिप्राय आर्थिक सामाजिक ढ़ाँचे में परिवर्तन का होना माना जा सकता है। समाज अपने आर्थिक क्रिया–कलापों के द्वारा एक दूसरे से बँधा होता है अतः निश्चित तौर पर सतयुग से कलियुग तक के यात्रा में आर्थिक ढ़ाँचे में परिवर्तन आना प्रारंभ हो चला था, जिसने आगे चलकर पूर्व मध्यकाल में एक नये तरह के आर्थिक ढ़ाँचे की संरचना के लिए आधार प्रस्तुत किया।

कलियुग का विस्तृत विवरण प्रायः अधिकांश पौराणिक ग्रंथों में प्राप्त होता है।[4] कलियुग का पौराणिक विवरण के रचना काल का मिलान भारतीय ऐतिहासिक घटनाक्रम तथा सामाजिक आर्थिक परिवर्त्तन के प्रक्रिया से करने पर यह प्रतीत होता है कि पुराण में वर्णित कृत युग, त्रेता और द्वापर की अवधारणा जहाँ सैद्धान्तिक है वही कलियुग का वर्णन ठोस जमीनी यथार्थ पर आधारित है।

विमर्शः

आधुनिक विद्वानों के मध्य कलियुग का काल निर्धारण एक समस्या है। पुराणों के गहन अध्ययन के आधार पर आर0सी0 हाजरा ने कलियुग को तीन काल खंडों में निरूपित किया है। पहला अवधि तीसरा और चौथे शताब्दी का प्रथम चतुर्थांश था। जिसका वर्णन वायु, ब्रह्माण्ड और विष्णु पुराण में मिलता है।[5] महाभारत के शांति पर्व का युग विवेचना भी इसी समय का है। ये अवधि इतिहास में कुषाण और सातवाहन शासन के अंत और गुप्त साम्राज्य के प्रारंभ के बीच का था, जब कि राजनीतिक अस्थिरता एवं दुर्बलता का व्यापक प्रभाव तत्कालीन समाज पर पड़ा और वर्णाश्रम धर्म धराशायी हो गया। वर्णाश्रम धर्म के धराशायी होने का प्रभाव निश्चित तौर पर आर्थिक व्यवस्था पर पड़ा होगा कूर्म पुराण और पद्म पुराण के आधार पर[6] रमेश चन्द्र हाजरा कलियुग का दूसरा कालखंड

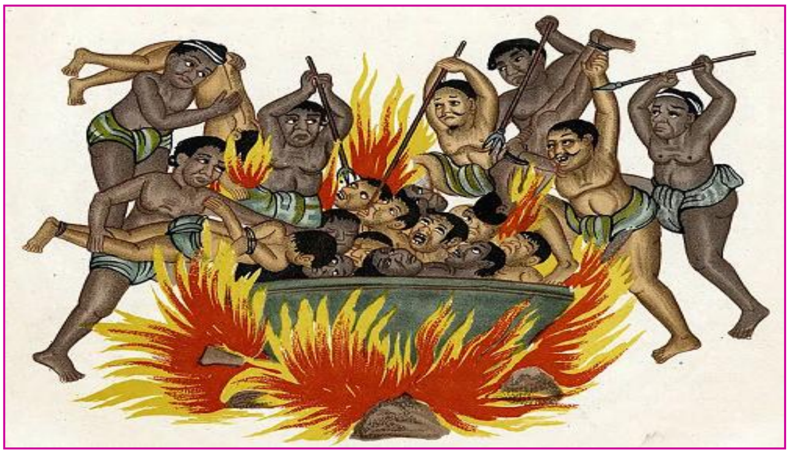

सातवीं आठवीं शताब्दी में निर्धारित किया जबकि हाजरा के अनुसार कलियुग का तीसरा संभावित आगमन दसवीं में हुआ जो मत्स्य पुराण पर आधारित है।[7] हाजरा द्वारा कलियुग का सुदीर्घ काल निर्धारण कमोवेश पार्जिटर के डाइनेस्टीज ऑफ द कलि एज[8] के अनुरूप है। जिसमें महाभारत युद्ध से लेकर गुप्त साम्राज्य के स्थापना तक के अवधि को कलियुग माना गया है। पी. वी. काणे की मान्यता है कि चार युगों की अवधारणा चौथी शताब्दी में प्रतिपादित हुआ था। आर0एस0 शर्मा के अनुसार सामाजिक इतिहास के निर्माण में मिथक और परम्परा का उपयोग किया जा सकता है तो कलियुग की अवधारणा को अस्वीकृत करने का कोई कारण नहीं बनता है।[9] आर.एस. शर्मा, हाजरा द्वारा दिए गए कलियुग के पहले अवधि को स्वीकार करते हैं, परन्तु वी.एन. एस. यादव, पराशर स्मृति और बृहनारदीय पुराण के आधार पर सातवीं से आठवीं शताब्दी को कलियुग अर्थात् संक्रमण काल मानते है।[10] संक्रमण काल विशेष तौर पर आथिक संरचना से जुड़ा हुआ था। सातवीं –आठवीं शताब्दी में राजनीतिक उथल–पुथल के कारण बाहरी तत्त्वों का मिथिला में जिस तरह से उपनिवेशन हो रहा था उसने यहाँ के आर्थिक संरचना को प्रभावित किया।

पराशर स्मृति के मनु, गौतम और शंख लिखित द्वारा प्रतिपादित धर्म विधान के अप्रासंगिकता के उल्लेख के बाद कलियुग के हेतु उपर्युक्त धर्म विधान का प्रतिपादन किय गया।[11] वृहनारदीयपुराण में देशाचार ग्रामधर्म और कलिवर्ज्यक विधान में कलियुग को प्रतिबिम्बित किया गया है।[12] वी.एन. एस.यादव के अनुसार सातवीं–आठवीं शताब्दी के मध्य पतन शील प्राचीन युग और प्रवेशशील मध्ययुग के संक्रमण कालीन शक्ति एवं प्रवृत्ति के अनुरूप पराशरस्मृति और बृहनारदीय पुराण के रचनाकारों द्वारा धर्म विधान किया गया। आर.एस. शर्मा भी स्वीकार करते है कि सातवीं शताब्दी में प्राचीन युग का पतन और मध्ययुग का पर्दापण हो रहा था।[13] मिथिला के इतिहास के संदर्भ में संक्रमण काल बी.एन.एस. यादव का व्याख्या और काल निर्धारण अधिक उपयुक्त है। जिसकी सम्पुष्टि सातवीं–आठवीं शताब्दी में मिथिला की राजनीतिक दशा और सामाजिक आर्थिक जीवन पर शैव एवं शाक्त धर्म तथा तंत्रवाद के बढ़ते प्रभाव से होता है।[14] उपर्युक्त तथ्यों ने आर्थिक व्यवस्था को नये सिरे से निर्धारित किया और परवर्ती काल में जीवन–यापन के नये आधार को विकसित करने का कार्य किया।

उपर्युक्त साक्ष्यों के विश्लेषण के आधार पर सातवीं शताब्दी को मिथिला के इतिहास में संक्रमण काल की संज्ञा दी जा सकती है। सातवीं शताब्दी कलियुग की दूसरी अवधि के रूप में मान्य है और शास्त्रपुराण में कलियुग अर्थात् सातवीं शताब्दी का एक अनिवार्य लक्षण विदेशी आक्रमण राज्य व्यवस्थापक शिथिलता और अराजकता को माना गया है। मिथिला के इतिहास में एक मात्र विदेशी आक्रमण सातवीं शताब्दी के मध्य में हुआ था। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के उपरान्त उत्तर भारत में व्याप्त राजनीतिक अस्थिरता और अराजकता तिब्बत के साम्राज्यवादी शासक स्रौत्र–ब्सान स्गैम्पो को मिथिला पर आक्रमण करने का तब सुनहला अवसर प्रदान किया जब चीनी राजदूत वांग मिथिला के तत्कालीन राजा अर्जुन अथवा अरूणाश्व द्वारा किया गया अपमान का बदला लेने हेतु स्रौंग से सैन्य सहायता की याचना की।[15] 643 ई0 तक नेपाल पर तिब्बत की प्रभुता कायम हो चुकी थी। वांग की सहायता के बहाने स्रौंग 650 ई0 के लगभग सेना भेजकर मिथिला को पददलित किया और मिथिला के राजा अर्जुन को बांग बंदी बनाकर चीन ले गया। ई0 एच0 पारकर के अनुसार 703 ई0 और लेवी के अनुसार 702 ई0 तक मिथिला पर तिब्बत का प्रमुभत्व कायम रहा।[16] आर.सी. मजुमदार की मान्यता है कि तिब्बती आक्रमण का कोई गंभीर प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि पूरब दिशा से भाष्कर वर्मन और उत्तर–पश्चिम दिशा से नेपाल के मार्ग से तिब्बती आक्रमण के परिणामस्वरूप मिथिला में सर्वत्र अराजकता व्याप्त हो गया था।

उल्लेखनीय है कि चीनी राजदूत वांग को मदद तिब्बती अधीनता में नेपाल के राजा विष्णु गुप्त और आसाम के भाष्यकर वर्मन के द्वारा दिया गया, और दो तरफा आक्रमण मिथिला को मटियामेट कर अराजकता के दलदल में धकेलने हेतु पर्याप्त था।[17]

मुजफ्फरपुर जिला के कटरा से प्राप्त प्रायः सातवीं–आठवीं शताब्दी के ताम्रपत्र अभिलेख[18] से ज्ञात होता है कि तिब्बती प्रभुत्व की समाप्ति के बाद उत्तर गुप्त शासक जीव गुप्त अथवा जीवित गुप्त II द्वारा मिथिला में पुरातन गुप्त शासन प्रणाली को पुर्न जीवित करने का प्रयत्न किया गया था। परंतु उसे शीघ्र ही कन्नौज के शासक यशोवर्मन द्वारा पराजित कर मार डाला गया। मगध और बंगाल के साथ मिथिला पर यशोवर्मन का अधिपत्य कायम हुआ, जिसकी पुष्टि नालंदा शिलालेश[19] से होता है। यशोवर्मन का मिथिला पर प्रभुत्व स्थायी

सिद्व नहीं हो सका। कश्मीर के ललितादित्य मुक्तापीड़ या जयापीड़ ने अपने पूर्वी भारतीय अभियान में बंगाल और मगध समेत मिथिला के पूर्वी हिस्सा अर्थात् पूर्णियाँ तक के प्रदेश के पद दलित किया। जयापीड़ ने पूर्णियाँ के शासक जयन्त के पुत्री कल्याण देवी से विवाह किया और जयन्त के पंचगौड़ को अपने अधीन लाने में मदद किया।[20] उल्लेखनीय है कि हर्षवर्द्धन के समकालीन गौड़ नरेश शशांक के शासन काल से गौड़ राज्य के पाँच प्रान्त में एक प्रान्त तिरहुत अर्थात् मिथिला को मानने की परम्परा चली आ रही थी। नेपाल के शासक जयदेव के 748ई0 के पशुपतिनाथ मंदिर अभिलेख से ज्ञात होता है कि कामरूप के शासक हर्षदेव बंगाल और तिरहुत के विरूद्व सैन्य अभियान किया था।[21]

उज्जैन नरेश यशोवर्मन अथवा शैल नरेश जयापीड़ या कामरूप के राजा हर्षदेव का मिथिलपा पर प्रभुत्व का क्या स्वरूप था इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। परंतु इसमें कोई दो राय नहीं है कि केन्द्रीय सत्ता की दूरी और अस्थिरता से ग्रामीण एवं स्थानीय स्तर पर नियंत्रण विहीन नये–नये सत्ता केन्द्र से स्वछन्द होकर विकसित हो रहा था। जिससे आर्थिक अराजकता की संभावना बढ़ गई। नियंत्रण विहीन केन्द्रीय सत्ता ने स्थानीय स्तर पर सत्ता स्थापित करने के मार्ग को खोलकर न केवल राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर अपितु बड़े पैमाने पर नये आर्थिक संरचना के उदय के माग खोले।

पाल राजसत्ता के उदय से पूर्व मिथिला पर चंद्र राजवंश के शासन का उल्लेख तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के द्वारा किया गया हो परंतु इस बात की सम्पुष्टि हेतु कोई अन्त साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जो चन्द्र राजवंश के शिथिल शासन का द्योतक हो। वस्तुतः चन्द्र राजवंश क अधीन मिथिला में अराजकता लगातार बढ़ता चला गया, जिसके चरमोत्कर्ष का विवरण धर्म पाल के खलीमपुर ताम्रपत्र अभिलेख और तारानाथ के वर्णन से प्राप्त होता है।[22] सातवीं–आठवीं शताब्दी के मिथिला के राजनीतिक परिदृश्य के संक्षिप्त सर्वेक्षण से स्पष्ट होता है कि इस दार में मिथिला में राज्य संस्था का नितान्त अभाव था। राजकीय नियंत्रण के अभाव में ग्राम तथा स्थानीय शासकों का स्वेच्छाचारी होना बिल्कुल स्वाभाविक था। विष्णु पुराण के अनुसार कलियुग में जिसके घोड़ा, हाथी रथ और सम्पत्ति था वो राजा बन सकता था।[23] आठवीं शताब्दी के मध्यकाल में मत्स्यन्याय की अवस्था से गुजर रहा था। इसका सत्यापन अनेकानेक साक्ष्यों से होता है। 750 ई0 में गोपाल गौड़ प्रदेश का शासक बना और शशांक के परम्परा में तिरहुत को अपने प्रांत के रूप में संगठित करने का प्रयत्न किया। गोपाल का महाप्रतापी पुत्र अपने सुदीर्घ शासन काल में मिथिला में अराजकता एवं अव्यवस्था को समाप्त कर प्रभावशाली शासन तंत्र कायम किया। यद्यपि मध्य भारत की राजनीति में वर्चस्व स्थापित करने के प्रश्न पर धर्मपाल, गुर्जर–प्रतिहार और राष्ट्रकूट शक्ति से लगातार संघर्षरत रहा और कई बार पराजित भी हुआ। किन्तु इससे पाल साम्राज्य के आंतरिक शासन पर कोई खास असर नहीं पड़ा।

निष्कर्ष:

इस तरह आठवीं शताब्दी के अंत होते–होते मिथिला अराजकता के दौर से निकल गया। अर्थात् नवमी शताब्दी के प्रदेश के साथ संक्रमण काल का अंत और मध्य युग का दृढ़ता पूर्वक प्रतिस्थापना हो चुका था।[24] निःसंदेह भूक्ति, विषय, मंडल और पाटक के रूप में साम्राज्य का प्रशासनिक विभाजन और सेना, राजस्व एवं सामान्य प्रशासन को सुसंगठित कर पाल शासकों के द्वारा सामन्तवादी शासन पद्धति दृढ़तापूर्वक स्थापित कर एक नवीन आर्थिक युग का उद्घाटन किया गया।

संदर्भ सूचीः–

1. शांति पर्व, महाभारत, एस0के0 बेलवलकर, क्रिटीकल (सं0), पूना 1949–54, 70, 7–13
2. उपर्युक्त, पृ0–14–15
3. उपर्युक्त, पृ0–16–17
4. रामशरण शर्मा, पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती समाज और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, पटना, 1996,पृ0–39
5. रमेशचन्द्र हाजरा, स्टडीज इन द पुराणिक रेकर्ड्स ऑन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, दिल्ली, 1975, पृ0–216–17, पृ0–174–75
6. उपर्युक्त, पृ0–177–187
7. उपर्युक्त

8. द्रष्टव्य, एफ.ई. पर्जिटर, द पुराण टेक्स्ट्स ऑफ द कलि एज, बनारस, 1962
9. आर.एस. शर्मा, दि अर्ली मिडियेवल इंडियन सोसाइटी, कोलकाता, 2001, पृ0–48
10. दि इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू, नई दिल्ली, 1979, वोल्युम–5, नं0–1–2, पेज–63
11. पराशरस्मृति, 1.24
12. वृहनारदीय पुराण, (सं0) पी0एच0शास्त्री, कलकत्ता, 1891, 22.17
13. आर.एस. शर्मा, सोशल चेंजेज इन अर्ली मिडियेबल इंडिया, दिल्ली, 1969
14. धर्मेन्द्र कुमर, मिथिला मिस्लेनी, दरभंगा, 2005, पृ0–127
15. वी0पी0सिन्हा (सं0), कम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ बिहार, वोल्युम–1, पार्ट–2, काशी प्रसाद, रिसर्च इंस्टीच्युट, पटना, 1974, पेज–285–288
16. उपर्युक्त
17. उपर्युक्त
18. उपर्युक्त, पृ0–289
19. उपर्युक्त, पृ0–285–288
20. उपर्युक्त
21. उपर्युक्त
22. उपर्युक्त
23. विष्णु पुराण, बम्बई, विक्रम संवत, 1969, 4.24,93
24. धमेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ0–131